श्रीवत्स लाञ्छन भट्टाचार्य प्रणीत काव्यपरीक्षा में रस विवेचन

अनिल कुमार
शोध छात्र, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

शोध–सार

काव्यशास्त्रीय विवेच्य विषयों में दोष का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आचार्य भरतमुनि से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ तकके आचार्यों ने काव्य में दोष परिवर्जन को आवष्यक माना है। अपदोषता स्वयं एक महत्त्वपूर्ण गुण है। ''अपदोषतैव विगुणस्य गुणः'' दोष काव्य में अपकर्षक होते हैं। काव्य में एक भी दोष नहीं होना चाहिए क्योंकि काव्य में दोष उपेक्षणीय नहीं है, जैसे सुन्दर मुख में थोड़ा सा भी कुष्ट उसकी सुन्दरता को नष्ट कर देता है, वैसे ही काव्य में दोष उसकी सरसता को नष्ट कर देता है। काव्य में रसानुभूति या आनन्दानुभूति में विघातक तत्व को 'दोष' कहा जाता है। इस प्रकार रस–प्रतीति के विघातक उद्वेगजनक तत्त्व दोष कहलाते हैं। यहाँ 'रस' शब्द से भाव, रसाभास और भावाभास आदि का भी ग्रहण होता है। अतः रस–भावादि के अपकर्षक ही दोष कहलाते हैं। अर्थात् जिससे रसादि की सम्यक् अनुभूति में बाधा होती है वही दोष है।
प्रस्तुत शोधपत्र में काव्यपरीक्षा में वर्णित रसदोषों का निरूपण करने के साथ–साथ व्यभिचारिभाव, रस, स्थायीभावों का स्वशब्द द्वारा कथन, विभाव, अनुभाव की कष्ट कल्पना द्वारा अभिव्यक्ति, प्रतिकूल विभावादि का ग्रहण, रस की पुनः–पुनः दीप्ति अवसर पर रस का विस्तार, रसच्छेद, अंग रस का अधिक विस्तार, प्रधान रस का विस्मरण, प्रकृति–विपर्यय और अनंग प्रकृत रस के अनुपकारक होने पर सम्यक् दृष्टिपात् किया गया है।

मुख्य शब्दः *काव्यशास्त्र, काव्यदोष, रस*

काव्यशास्त्र में दोष प्रकरण बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। आचार्य भरतमुनि से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ तकके आचार्यों ने माना है कि काव्य निर्दोष होना चाहिए क्योंकि दोष काव्य में अपकर्षक होते हैं। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र के सोलहवें अध्याय में काव्य दोषों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि

गूढार्थमर्थान्तरमर्थहीनं भिन्नार्थमेकार्थमभिप्लुतार्थम्।
न्यायादपेतं विषयं विसन्धि शब्दच्युतं वै दष
काव्यदोषाः।

आचार्य मुनि ने दोष निरूपण तो स्पष्ट रूप से नहीं किया है, किन्तु रसों के वर्णन के साथ रस दोषों की चर्चा की है। इन्होंने अगूढदोष, अर्थान्तरदोष, अर्थहीनदोष, भिन्नार्थदोष, एकार्थदोष, अभिप्लुतार्थदोष, न्यायादपेतदोष, विषमदोष, विसन्धिदोष और शब्दच्युतदोष माना है।

आचार्य भामह ने अपने काव्यालंकार में कहा है कि शब्दार्थयुगलरूप काव्य को दोष से रहित होना चाहिए –

सर्वथा पदमप्येकं न निगाद्यमवद्यवत्।
विलक्ष्मणा हि काव्येन दुःसुतेनेव निन्द्यते।।

काव्य में एक भी दोष नहीं होना चाहिए क्योंकि काव्य में दोष उपेक्षणीय नहीं है, जैसे सुन्दर मुख में थोड़ा सा भी कुष्ट उसकी सुन्दरता को नष्ट कर देता है, वैसे ही काव्य में दोष उसकी सरसता को नष्ट कर देता है। दण्डी भी काव्य को निर्दोष होना परम आवश्यक मानते हैं।

तदल्पमपि नोपेक्ष्यं काव्ये दुष्टं कथ´चन।
स्वाद्वयुः सुन्दरमपि ष्वित्रेणैकेन दुर्भगम्।।

आचार्य मम्मट ने मुख्यार्थहति को काव्य का दोष माना है। मुख्यार्थहतिदोषः हति का अभिप्राय अपकर्षक है तथा काव्य में रस ही मुख्यार्थ है। इस प्रकार मुख्यार्थ रस के अपकर्षक तत्व को दोष कहते हैं। रस का अर्थ भाव, रसाभास, भावासादि। अतः रस–भावादि के अपकर्षक को ही दोष कहते हैं। आचार्य मम्मट ने रस दोष का लक्षण इस प्रकार दिया है–

मुख्यार्थहतिर्दोषो रसश्च मुख्यस्तदाश्रयाद्वाच्यः।

उभयोपयोगिनः स्युः शब्दाद्यास्तेन तेष्वपि सः।।

इसी प्रकार भरतमुनि से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ तक सभी आचार्यों ने दोष रहित काव्य की श्रेष्ठता स्वीकार की है यहाँ श्रीवत्स, लांछन भट्टाचार्य के रस दोष निरूपण की चर्चा करने से पहले दोष क्या है यह जाना अत्यावष्यक है।

काव्य में रसानुभूति या आनन्दानुभूति में विघातक तत्व को 'दोष' कहा जाता है। रसानुभूति में उद्वेगजनक तत्वों का होना दोष है–**उद्वेगजनको सभायाम्** सहृदयों को रसानुभूति के समय जिससे उद्विग्नता होती है उसे दोष कहते हैं। इस प्रकार रस–प्रतीति के विघातक उद्वेगजनक तत्त्व दोष कहलाते हैं। यहाँ 'रस' षब्द से भाव रसाभास और भावाभास आदि का भी ग्रहण होता है। अतः रस–भावादि के अपकर्षक ही दोष कहलाते हैं। अर्थात् जिससे रसादि की सम्यक् अनुभूति में बाधा होती है वही दोष है।

काव्य में दोषों का परिवर्जन बहुत आवश्यक माना जाता है इसीलिए ही मम्मट ने काव्य लक्षण देते हुए सर्वप्रथम 'अदोषो' पद को ही रखा है। शब्दार्थ काव्य का स्वरूप होने पर भी उसको बाद में रखा है। प्राचीन काल से ही आलंकारिक आचार्यों द्वारा काव्य–दोष का विवेचन भी चला आ रहा है इसका एक मात्र उद्देष्य था कि कविजन काव्यदोष से भलीभांति परिचित हो तथा काव्य में उसके प्रयोग से बचें। **सौकर्याय प्रपंचः** प्रायः साहित्यशास्त्र में दोष के सामान्य स्वरूप की अपेक्षा दोष विषेष का ही विवेचन किया गया है।

श्रीवत्स लांछन भट्टाचार्य ने काव्य के 3 दोष माने हैं, शब्ददोष, अर्थदोष और रसदोष। जो पद वाक्य वर्णन और रचना आदि में रस का अपकर्षक होता है उसे शब्ददोष कहते हैं। रसोपकार वाच्य अर्थात् शब्दबोध्य अर्थ के अपकर्षक अर्थदोष हैं रसादि के अपकर्षक रसदोष हैं। पदगत दोष सोलह हैं। इनमें से क्लिष्टदोष, अविमृष्ट विधेयांश और विरुद्धकृत ये तीन दोष समासगत होते हैं अन्य शेष श्रुतिकटु आदि तेरह दोष पदगत और समासगत दोनों होते हैं। सोलह पदगत दोष – 1.श्रुतिकटु, 2.व्युतसंस्कृति, 3. अप्रयुक्त, 4.असमर्थ, 5.निहतार्थ, 6.अनुचितार्थ, 7. निरर्थक, 8.अवाचक, 9.त्रिविध अश्लीलदोष, (वीड़ा, निन्दा, अमंगला), 10.सन्दिग्ध, 11.अप्रतीत, 12.ग्राम्य, 13.नेयार्थ, 14.क्लिष्ट, 15.अविमृष्टविधेयांश, 16. विरुद्धमतिकृति।

श्रीवत्सलांछन भट्टाचार्य ने काव्य परीक्षा में वाक्यगत दोष – 15 माने हैं। 1.प्रतिकूलवर्ण, 2. उपहतविसर्ग, 3.लुप्तविसर्ग, 4.विसन्धि, 5.हतवृत्त, 6. न्यूनपद, 7.अधिकपद, 8.कथितपद, 9.पतत्प्रकर्ष, 10. समाप्तपुनरात्त, 11.अपदस्थ समास, 12.विमत, 13. प्रसिद्धिहत, 14.भग्नप्रकम, 15.अमवन्मत।

श्रीवत्स ने 1.अपुष्टदोष, 2.कष्टत्व, 3. व्याहतदोष, दुष्क्रमदोष, 5.ग्रामदोष, 6.निर्हेतुदोष, 7. विरुद्धतादोष, 8.अनवीकृतत्वदोष, 9.सनियमपरिवृत्त, 10.अनियमपरिवृत्त, 11.विशेषपरिवृत्त, 12.अविशेष परिवृत्तदोष, 13.साकांक्षतादोष, 14.अपदयुक्ततादोष, 15.सहचरभिन्नतादोष, 16.प्रकाशित विरुद्धतादोष, 17.विध्युक्ता, 18.अनुवादायुक्तादोष, 19. अश्लीलतादोष से 19 प्रकार के माने हैं।

आचार्य भाष्मह का कथन है कि सन्निवेष और आश्रय के वैशिष्ट्य से दो भी गुण हो सकते हैं। भोज, वामन, दण्डी आदि सभी आचार्यों ने दोषोपवादों का उल्लेख करते हुए दोषों की अदूषकता का प्रतिपादन किया है। श्रीवत्स यहाँ पर दोषों के अदोषों के होने की चर्चा करते हुए कहते हैं कि उक्त दोष सब जगह दोष नहीं होते अपितु विषय–विशेष के अनुसार दोष भी गुण हो जाते हैं। ऐसे दोषों को अनित्यदोष कहते हैं।

वर्णावतंसादिपदे कर्णादि ध्वनिनिर्मिताः।
संनिधानादि बोधार्थम्।

अर्थात् कर्णावतंस आदि पदों में कर्ण आदि पदों का प्रयोग (ध्वनिनिर्मितः) सन्निधान आदि के बोध के लिए होता है।

श्रीवत्स लांछन भट्टाचार्य ने काव्य परीक्षा में 13 रस दोषों का निरूपण किया है–

व्यभिचारिरसस्थायिभावानां शब्दवाच्यता।
कष्टकल्पनया व्यक्तिरनुभाविभावयोः।।
प्रतिकूलविभावादिग्रहो दीप्तिः पुनः पुनः।
अकाण्डे प्रथनच्छेदोवंगस्याप्यतिविस्तृतिः।
अंगिनोऽनुसंधानं प्रकृतीनां विपर्ययः।
अंगस्याभिधानं च रसे दोषाः स्युरीदृषाः।।

अर्थात् व्यभिचारिभाव, रस, स्थायीभावों का स्वशब्द द्वारा कथन, विभाव, अनुभाव की कष्ट कल्पना द्वारा अभिव्यक्ति, प्रतिकूल विभावादि का ग्रहण, रस की पुनः–पुनः दीप्ति अनवसर पर रस का विस्तार, रसच्छेद, अंग रस का अधिक विस्तार, प्रधान रस का विस्मरण, प्रकृति–विपर्यय और अगन प्रकृत रस के अनुपकारक का कथन इस प्रकार से रस के 13 दोष होते हैं।

1. व्यभिचारि भाव की स्वशब्द वाच्यता

जहाँ पर व्यभिचारी भाव का स्वशब्द से कथन किया जाता है वहाँ व्यभिचारी भाव की स्वशब्द वाच्यता दोष होता है। जैसे '**सवीडादयितानने**' इस श्लोक में व्रीड़ा, त्रास, विस्मय आदि व्यभिचारी भावों का स्वशब्द से कथन किया गया है अतः यहाँ व्यभिचारी भाव की स्व शब्दताच्यता दोष है।

2. रस की स्वशब्दवाच्यता दोष

रस का स्वशब्द अर्थात्, रस षब्द से या श्रृंगार आदि शब्दों से कथन रस का स्वशब्दवाच्यता दोष कहलाता है। **तामनंगजयमंगलश्रियं** यहाँ पर रस का रस शब्द के द्वारा अभिधान किया गया है अतः यहाँ पर उक्त रस दोष है।

3. स्थायीभाव स्वशब्दवाच्यता दोष

यह दोष वहाँ होता है जहाँ पर स्थायी भाव का स्वशब्द से कथन हो वहाँ स्थायी भाव की स्वशब्दवाच्यता दोष होता है, जैसे–**संप्रहारै प्रहरणैः प्रहाराणां परस्परम्** अर्थात् सस्वर भूमि में शास्त्रों के परस्पर प्रहार से उत्पन्न 'ठणत्' ध्वनि वर्णगोचर होने पर उसमें कोइ अपूर्व उत्साह हुआ। यहाँ पर 'वीर रस के स्थायी भाव 'उत्साह' का स्वशब्द से कथन होने पर स्थायी भाव की स्वशब्द वाच्यता दोष है।

4. अनुभव की क्लिष्टकल्पना

जहाँ पर उद्दीपन और आलम्बन रूप श्रृंगार योग्य विभाव, अनुभाव में पर्यवसित रूप में स्थित है किन्तु ऐसी उद्दीपक स्थिति में नायिका को देखकर नायक में स्वेद, रोमांचादि के अनुसन्धान वषक्लिष्टकल्पना द्वारा प्रतीति होती है वहाँ अनुभाव की कष्टकल्पना दोष है–

5. विभाव की कष्टकल्पना दोष

जब विभावों से कष्टकल्पना से रस की प्रतीति होती है। तो उसे विभाव का कष्टकल्पना दोष कहते हैं।

6. प्रतिकूल विभावादि का ग्रहण

जहाँ पर प्रकृत रस के विरुद्ध रसों के विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भावों का वर्णन हो तो वह प्रतिकूल विभावादि का ग्रहण नामक दोष होता है, **व्यजत मानमलं बतविग्रहे** यहाँ पर श्रृंगार रस के विरोधी शान्त रस का अनित्यता प्रकाशन रूप विभाव तथा उससे निर्दिष्ट निर्वेदरूप व्यभिचारी भाव का ग्रहण किया गया है। अतः यहाँ प्रतिकूल विभावादि रूप रस दोष है।

7. रस की पुनः पुनः दीप्ति

जहाँ पर रस का उपयोग हो जाने पर बार–बार उसी रस का वर्णन होता है तो वहाँ पर रस की पुनः–पुनः दीप्ति रस दोष कहलाता है जैसे– कालिदास रचित 'कुमारसम्भवम्' के चतुर्थ सर्ग में काम–पीड़ा के बाद रति विलाप के वर्णन में करुण रस का बारम्बार आस्वादन दोष पूर्ण है।

8. अकाण्ड प्रथम

अकाण्ड का अभिप्राय है 'उचित अवसर न होना' अर्थात् अनवसर पर रस का विस्तार करना 'अकाण्ड प्रथन' रस दोष कहलाता है, जैसे वेणीसंहार नामक नाटक में भीष्म आदि अनेक वीरों

का संहार शुरू होने पर भानुमती का दुर्योधन के साथ रमण रूप शृंगार रस का वर्णन 'अकाण्ड प्रथन' रस दोष है।

9. अकाण्डच्छेद रस दोष

उचित अवसर न होने पर भी रस का विच्छेद करना अकाण्डच्छेद रसदोष कहा जाता है। जिस प्रकार महावीर चरित नाटक के द्वितीय अंक में राम और परशुराम के वीर रसोचित युद्धोत्साह के अविच्छन्न रूप से अभिव्यक्त होने पर 'कंकण–सोचन' के लिए जा रहा है, इस प्रकार राम का कथन रसानुभूति में बाधक होने से रस दोष हो गया है।

10. अंग रग का अतिविस्तार

अंग का तात्पर्य अप्रधान से है, अर्थात् जहाँ पर अप्रधान रस या पात्र का अत्यधिक विस्तार के साथ वर्णन किया जाता है। वहाँ अंग रस का अतिविस्तार नामक रसदोष होता है, जैसे हयग्रीववध नाटक में प्रधान अभिनेता विष्णु है परन्तु यहाँ पर अप्रधान या प्रतिनायक हयग्रीव का जलक्रीड़ा, वनविहार, रतोत्सव आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है यहाँ प्रतिनायक के महत्व को बढ़ाने के कारण दोष माना गया है।

11. अंगी का अनुसन्धान

अंगी अर्थात् प्रधान। जब प्रधान रस या पात्रादि का विस्मरण हो जाता है तो वहाँ रसदोष होता है। जैसे रत्नावली नाटिका के चतुर्थ अंक में सिंहलेश्वर के कंचुकी वाभ्रव्य के उपस्थित होने पर सागरिका का नायक वत्सराज द्वारा विस्मरण हो जाता है। अतः यहाँ अंगी का विस्मरण नामक रसदोष है।

12. प्रकृति विपर्यय दोष

जहाँ पर औचित्य का परित्याग कर प्रकृति के विरुद्ध वर्णन किया जाता है वहाँ प्रकृति विपर्यय रसदोष होता है। दिव्य, अदिव्य और दिव्यादिव्य भेद से नायक के तीन भेद होते हैं। ये तीनों भेद भी धीरोदात्त, धीरोद्धत्त, धीरललित, धीरप्रशान्त भेद से चार प्रकार के होते हैं। इसके भी उत्तम, मध्यम और अधम रूप से तीन–तीन भेद होते हैं। इस प्रकार नायक के कुल 36 भेद हो जाते हैं। इस प्रकार के औचित्य का परित्याग करके इनके विपरीत वर्णन करने से प्रकृति विपर्यय दोष हो जाता है।

13 अनंग प्रकृत रस के अनुपकारक का कथन

जो रस का उपकारक न हो, उसका वर्णन करना और 'ईद्धषाः' इस प्रकार के अन्य का वर्णन रसदोष कहलाता है। जैसे नायिका के पाद प्रहार से नायक का कोपादि वर्णन। जैसे कि ध्वनिकार ने भी कहा है कि अनौचित्य के अतिरिक्त रस भाग का और कोई कारण नहीं है और अनौचित्य का अनुपालन करना ही रस का परम रहस्य है। जैसे कर्पूरमंजरी में नायिका विभ्रमलेखा के द्वारा और अपने द्वारा किये गये बसन्त वर्णन की उपेक्षा करके बन्दिजनों द्वारा वर्णित बसन्त सुषमा की राजा द्वारा प्रशंसा। यहाँ प्रकृत रस के अनुपकारक होने से रसदोष है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि जो रस के उत्कर्ष में बाधक, अवरोधक और अपकर्षक होता है उसे रसदोष कहते हैं। श्रीवत्सलांछन भट्टाचार्य ने भी इन्हीं रसापकर्षकों का वर्णन काव्य–परीक्षा में किया है।

सन्दर्भ

1. नाट्यशास्त्र–16/89
2. काव्यालंकार सूत्र–1/11
3. काव्यादर्श–1/6–7
4. व्याख्याकार–आचार्य विष्वेष्वर–7/49
5. काव्यप्रकाश–सम्पादक श्रीनिवास– व्याख्या, पृ0 सं0 279
6. संस्कृत वाङ्मय का बृहद इतिहास, अष्टम खण्ड काव्यशास्त्र, पृ0 सं0 605
7. काव्यालंकार– 2/1/3
8. दुष्टं पदं श्रुतिकटु.....विरुद्धमतिकृत, समासगतमेव–काव्यपरीक्षा– 3/38– 39
9. प्रतिकूलवर्णमुपहतलुप्तविसर्ग.....काव्यपरीक्षा–3/41,42
10. काव्यपरीक्षा–3/43
11. काव्यपरीक्षा– 3/45–47
12. काव्यपरीक्षा उल्लास 3, उदाहरण संख्या– 164
13. काव्यपरीक्षा उल्लास 3, उदाहरण संख्या– 166
14. काव्यपरीक्षा उल्लास 3, उदाहरण संख्या– 167
15. काव्यपरीक्षा उल्लास 3, उदाहरण संख्या– 168